REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2018

ममता कालिया का उपन्यास 'बेघर' : स्त्री जीवन का सच

डॉ. नीलम तिवारी

प्रस्तावना :

ममता कालिया जी का नाम 60 के दशक की उपन्यास लेखिकाओं के बीच आता है। इन्होंने अपना लेखन कार्य 1960 से आरंभ किया है। इस समय इन्होंने सर्वप्रथम कविताओं से लेखन की शुरूआत की लेकिन ये प्रभाव स्थायी सिद्ध नहीं हुए फिर साहित्यकारों की लोकप्रिय छवि और कहानी में पल–पल होने परिवर्तन ने इनका रुख कहानी लेखन की तरफ कर दिया। फिर 1971 में इन्होंने सर्वप्रथम उपन्यास का सृजन कार्य आरंभ किया और यहीं से इनकी लेखनी उच्चता के शिखर पर पहुँची जो आज तक सक्रिय है। 1960 के दौर में जीवन के सभी क्षेत्रों में जो परिवर्तन हुए उसका प्रभाव लेखिका की कृतियों पर भी पड़ा। इनका लेखन कार्य अपने परिवेश में अछूता न रह सका। परिवार का परिवेश साहित्यिक परिवेश था। ममता जी ने साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। परन्तु उपन्यास एवं कहानियाँ इनकी रचना की प्रमुख विधा रही है। उपन्यास नारी जीवन को प्रधानता देते हैं। लेखिका नारी–जीवन के अनेक अंशों में सारी व्यथा, दुख को पूरी शक्ति के साथ उपन्यासों में अभिव्यक्त करती है।

आधुनिक और पुरातन मानवीय मूल्य के बीच सामंजस्य स्थापित कर नारी की प्रगतिशील दृष्टि को विकसित करना लेखिका का उद्देश्य रहा है। वे ऐसे चरित्रों का निर्माण करती हैं जो सहजता से भुलाये नहीं जा सकते। ममता जी नारी होकर नारी की समस्याओं को वास्तविक धरातल पर साहस के साथ प्रस्तुत करती हैं। जहाँ नारी का अपना भी एक जीवन है। उसकी कुछ आवश्यकताएँ है। आमतौर पर आज के व्यस्त जीवन में जहां इस ओर कोई ध्यान नहीं देता वहां ममताजी इसे यथार्थता के साथ स्वीकार करती हैं। वे अपने चरित्रों को मनोवैज्ञानिक तर्क के धरातल पर पहचानती हैं। किसी भी स्थिति में अपने विवेक को स्थिर रखती हैं। उनकी रचनाओं में वेदना और अनुभूति का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके विचार नारी–स्वतंत्रता से जुड़े है। वे पुरुष द्वारा नारी के शोषण को स्वीकार नहीं करती हैं। वे एक ऐसे पति–पत्नी संबंध को महत्व देती हैं जिसमें दोनों का व्यक्तित्व स्वतंत्र हो। वे मानती हैं कि इन दोनों के बीच प्रेम ही एक सूत्र है। दोनों के मध्य समर्पण ही एक आधार है, जो दोनों को जोड़े रखता है। इनकी दृष्टि में नारी पुरुष के मनोरंजन के लिए क्रीड़ा–कंदुक नहीं है। नारी सर्वतो–भावेन भोग्या नहीं है कहकर स्वावलंबन को महत्व दिया है। नारी को स्वावलंबी होना पड़ेगा तभी उसका व्यक्तित्व विकसित होगा। पत्नी–पति की सेविका नहीं है। नारी–जीवन से संबंधित समस्याएँ उनके लेखों का मुख्य विषय रहा है। पति–पत्नी संबंध और प्रेम के विविध पक्षों को ममताजी ने उजागर किया है। नारी–जीवन की यथार्थता को रोचकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास ममताजी को अग्रिम पंक्ति में खड़ा कर देता है।

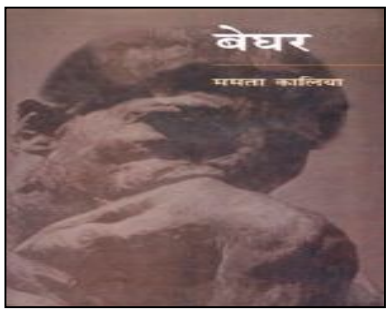

ममताजी के उपन्यासों में नारी की उच्च स्थिति को लेकर उसकी मनोवैज्ञानिक व्याकुलता आक्रोश और क्षुब्धता का चित्रण मिलता है। जिनमें कभी सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं और मनोवृत्तियों का चित्रण मिलता है। इस प्रकार सामाजिक उत्पीड़न और शोषण का समाहार उनकी कृतियों में प्राप्त होता है।

आंतरिक और बाह्य जीवन जीने की प्रक्रिया में जो संघर्ष करना

पड़ता है। उससे हमारे व्यक्तित्व में बहुत कुछ टूटता और बनता है। ममताजी ने जीवनगत अनुभवों को भोगकर प्रमाणिकता के साथ जिन तत्वों को उभारा है वे समाज के विकास के लिए उपयोगी होने के साथ जरूरी भी हैं। वास्तव में वे उपन्यास प्रतीत न होकर हमारे द्वारा जिये जाने वाले जीवन का चित्र लगने लगते हैं। संवेदनशील नारी कथाकार ममता कालिया के उपन्यासों में अधिकांशतः त्रासदी है जिसमें नारी जीवन की व्यथा के अनेक स्तर खुलते हैं। ममता जी के उपन्यासों में रोमानी भावुकता के साथ मोहकता और खिंचाव हमेशा देखने को मिलता है। समय की दृष्टि से इनके उपन्यास सामंती समाज और स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के आधुनिक जीवन को चित्रित करते हैं।

ममता कालिया एक कहानीकार के साथ–साथ उपन्यासकार भी हैं। इनका लेखन भारतीय नारी के आसपास घूमता है। वे संस्कारबद्ध और रूढ़िवादिता से संबंधित नारी की मानसिकता में घुटते हुए प्रश्नों को उठाकर यथार्थता के धरातल पर प्रस्तुत करती हैं। गृहस्थ जीवन के बीच पति–पत्नी संबंधों और कुंआरेपन की धारणा जैसे तथ्य को लेकर उपन्यास को गति प्रदान करती है।

ममता कालिया के उपन्यास नारी जीवन, उसके स्वातंत्र्य और उसकी समस्याओं पर आधारित है। वे नारी यथार्थ से भरे हुए हैं। इन प्रभावों और प्रेरणा का एक मुख्य कारण यह भी है कि उन्हें स्त्री की स्थिति को नजदीक से जानने का मौका मिलता है और उसे वे उपन्यासों में जीवंत रूप में प्रस्तुत करने में सफल रही हैं।

ममता जी नारी मन के अंधेरे गवाक्षों में उतरकर एक भोक्ता की दृष्टि से तटस्थता के साथ उन आंतरिक भावों को चित्रित करती हैं जो नारी के व्यक्तित्व को संपूर्ण बनाता है। नारी–जीवन के व्यापक अनुभव ममताजी की रचना के आधार हैं। भारतीय समाज के विभिन्न संबंधों को अंगों के रूप में स्त्री–विमर्श और नारी स्वातंत्र्य को ममता जी ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। समाज की मान्यताओं और संस्कारों के बीच समझौतावादी नारी की दोनों मनःस्थितियों का चित्रण हमें उपन्यासों में देखने को मिलता है। नारी एक ओर अपनी सुरक्षा के लिए समाज की संकीर्ण मनोवृत्ति को स्वीकार करती है, वहीं दूसरी ओर अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए आत्म–निर्वासन को महत्व देती है। इस प्रकार पूरे परिवेश पर अपना प्रभाव छोड़ती है। नारी समाज से अलग नहीं होती है।

उन्होंने अपने साहित्य में नारी समाज की पीड़ा, संघर्ष और नारी–जीवन से जुड़े ज्वलंत प्रश्नों पर विश्वसनीय एवं प्रतिनिधित्व कर बदलते जीवन मूल्यों के संदर्भ में नारी की स्थिति को रेखांकित किया है। ममता कालिया उन्मुक्त यथार्थ का तेज लेकर आती हैं किन्तु इनकी उन्मुक्तता और तेज–मिजाजी की पहचान यौन–प्रसंगों में अधिक देखी जा सकती है। इस तरह लेखिका नारी की चेतना का जो स्वरूप लेकर सामने आती है उनमें शिक्षित–अशिक्षित सभी नारी पात्र है। जो परिस्थिति से विवश अपने अधिकार और अस्तित्व को बनाए रखने में सफल है।

ममता कालिया समकालीन महिला कथाकारों की तरह नगरीय या ग्रामीण जीवन के नारी पात्रों का चित्रण नहीं करतीं बल्कि वे समाज की सड़ी–गली जर्जर रीतियों को तोड़ने का प्रयास करती हैं। ममताजी का रचना संसार यथार्थ से जुड़ा है। इन्होंने अपने उपन्यासों में एक ओर संयुक्त परिवार के टूटने, केन्द्रीय परिवार के विघटित होने और दाम्पत्य जीवन में आई ददार को प्रमुखता के साथ चित्रित किया है।

नारी अब किसी की गुलाम होकर नहीं रहना चाहती। वह भी एक स्वछंद खुले वातावरण में एकाग्र होकर जीवन जीना चाहती है। इसलिए उसने पुरुष वर्ग से संघर्ष करना शुरू कर दिया। उसने गुलामी की जंजीरों को तोड़ा है; और इससे भी पहले उसने उन्मुक्त प्रेम–संबंधों को महत्व दिया है। अब नारी के लिये परंपरा से चली आ रही पति–परमेश्वर की बातें थोथी लगने लगी हैं। इस कारण पति के होते हुए भी वह अन्य पुरुष से दैहिक संबंध स्थापित करने में कोई बुराई या पाप नहीं मानती है।

ममताजी ने अब तक लगभग 8 उपन्यासों की रचना की है जो हैं– बेघर (1971), नरक दर नरक (1976), प्रेमकहानी (1980), लड़कियां (1987), एक पत्नी के नोट्स (1997), दौड़ (2000), थिएटर रोड के कौए, पच्चीस साल की लड़की।

''बेघर'' ममता कालिया का पहला उपन्यास है। यह कृति अपनी ताजगी, तेवर और ताप से एक बारगी प्रबुद्ध पाठकों और आलोचकों का ध्यान खींचती है। इस पुस्तक के अब तक कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, पेपर बैक संक्षिप्त संस्करण भी। हिन्दी उपन्यास के अब तक चले आ रहे स्वरूप को 'बेघर' तोड़ता और पुनः परिभाषित करता है। कथा का नायक परमजीत दिल्ली से बंबई आता है अपनी पुरानी कब्ज और कच्ची पक्की अंग्रेजी लेकर। वहां उसे एक बिल्कुल अलग किस्म की लड़की संजीवनी भरुचा अकस्मात मिलती है और भी

कई विलक्षण लोग उसकी जिंदगी में आते हैं। संजीवनी के आगे वह कभी पद्धतिबद्ध ढंग से विवाह का प्रस्ताव तो नहीं रखता पर दोनों को महसूस होता है कि वे एक–दूसरे के लिये हैं। उनका प्रेम सुखद परिणति तक पहुंचने से पूर्व ही ध्वस्त हो जाता है और वे एक–दूसरे से अलग होकर उदास जिंदगी जीने के लिए बाध्य हो जाते हैं। सामाजिक अर्थों में परमजीत रमा से विवाह करता है बच्चे भी आते हैं पर कथानायक घर के होते हुए भी बेघर है। रमा की रूढ़िग्रस्तता नायक के आत्मनिर्वासन पर अंतिम मुहर लगा देती है। दो नगरों की रेशा–रेशा उघाड़ती यह कथा प्रेम और विवाह के बीच के अंतर और अंतराल का अध्ययन प्रस्तुत करती है।

''बेघर'' में 'सेक्स' के स्वरूप को लेखिका ने नये दृष्टिकोण से आंका है। ''हिन्दी में बेघर पहला उपन्यास है जो 'कौमार्य के मिथक' की पुरुष समाज में व्याप्त रूढ़ धारणाओं पर प्रश्नचिन्ह लगा गहरी चोट करता है। यह उपन्यास मध्यवर्गीय समाज के मानसिक संस्कारों मे शिक्षित–दीक्षित पुरुषों की परंपरागत सोच–समझ और स्त्री के प्रति भोगवादी, सामंती तथा अमानवीय व्यवहार के कारण ऐतिहासिक, धार्मिक और सामाजिक पृष्ठ भूमि में घर से बेघर की जाती रही संजीवनियों की अंतहीन व्यथा–कथा है, जिसे अपने 'कथा–समय' में नायक अनायक या प्रतिनायक परमजीत की 'अचानक मौत के बाद 'घर' की सारी सुखद धारणाओं के बाद एक अनाथ 'बेघर' परंपरा का उत्तराधिकारी माना गया है।''[1] 'बेघर उपन्यास अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। आज यौन–शुचिता का जो मिथक टूट रहा है उसको बड़ी खूबसूरती के साथ 'बेघर' में ममता कालिया ने चित्रित किया है। हिन्दी उपन्यास पुर्नपरिभाषा के जिस मोड़ पर आज खड़ा है 'बेघर' की शुरूआत यहीं से होती है। ममता कालिया ने 'बेघर' में एक लड़की के कुंआरेपन को कसौटी पर कसा है। किस तरह संभोग संदेह में बदलकर प्रेमी–प्रेमिका के संबंध को तोड़ देता है इसका चित्रण बेघर में हुआ है। रूढ़िग्रस्त व्यक्ति की मानसिकताा को उठाया गया है। ''वस्तुतः स्त्री के कुंआरेपन को लेकर पुरुष समाज में जो रूढ़ धारणाएँ है, वे न सिर्फ अवैज्ञानिक है बल्कि अमानवीय भी हैं।''[2]

'बेघर' स्त्री जीवन के सच पर आधारित उपन्यास है क्योंकि उसमें मर्द की अंधविश्वासी प्रवृत्ति कुंआरेपन को लेकर मर्द की परंपरागत सोच, उसकी विकृत यौन मानसिकता, स्त्री को केवल अपनी भोग्य वस्तु समझना आदि को दर्शाया गया है। क्योंकि शुरूआत में ही परमजीत के अवचेतन में 'प्रेम' और 'घर' एक सपना है और सपने में संजीवनी अश्लील यौन आकांक्षाओं की तृप्ति करती इच्छावस्तु। परमजीत के सपनों, संवादों को किसी भी दृष्टिकोण से स्वस्थ, सहज और रूचि सम्पन्न पुरुष की प्रेमाभिव्यक्ति नहीं कहा जा सकता। यह स्त्री देह के आखेट पर निकले किसी शिकारी की शतरंज ही हो सकती है और वस्तुतः है भी। वह संजीवनी के साथ कभी 'किसी कोने में सटकर बैठने' की बात करता है और कभी ''घर तो रोज जाती हो न जाओ एक दिन''[3] कहकर मन ही मन सुख टटोलता है। कहता है ''मैं वीकली नहीं 'लाइफ' और 'प्लेबॉय' पढ़ता हूँ। पढ़ता नहीं सिर्फ रेलवे स्टेशन पर पन्ने पलट लेता था।''[4] परमजीत संजीवनी में 'प्लेबॉय' की न्यूड मॉडल तलाशता रहता है, जो सजीव नारीदेह बनकर एक दिन 'रात में' उसके कंबल में होगी।[5] धीरे–धीरे सारी सीमाएं लांघकर आवाज दबाकर कहता है, 'अकेले में, तुम्हारे तलबे सहलाकर तुम्हारे बाल खोलकर तुम्हें एक ही पल में लड़की से औरत बना दूंगा संजी''[6] संजीवनी ऐसी उघड़ी बातें सुनकर सिर से पैर तक कांप जाती है क्योंकि परमजीत ने अपनी बातें उसके–कपड़ों के अन्दर तक पहुंचा दी थीं। जब भी वह संजीवनी से मिलता कुछ न कुछ अश्लील हरकत जरूर करता है। इन हरकतों से उसकी विकृत मानसिकता का पता चलता है। केवल स्त्री देह पर विजय और सुख की कामना उसके मन में थी।

'बेघर' ऐसा पहला उपन्यास है जिसमें औरत की यौन–शुचिता पर प्रश्न उठाया गया है। संजीवनी के माध्यम से परमजीत छुट्टी के दिन संजीवनी को दफ्तर तक ले जाता है यहां से भागने या बचने का कोई रास्ता नहीं और वहां उसके साथ वह दुर्व्यवहार करता है। ''मुख्यद्वार बंद कर संजीवनी को उसने कसकर भींच लिया बांहों में उसने संजीवनी को जगह–जगह चूम डाला। संजीवनी ने जबरन चेहरा थामा और कहा 'तप रहे हो तुम'।[7] वह उस पर विजयी भाव से सर्वाधिकार सुरक्षित होने की घोषणा करता है कि ''ये होंठ भी मेरे है, आंखे भी मेरी है, गाल भी मेरे हैं, ठोढ़ी भी मेरी है।''[8] स्त्री देह पर पुरुष अपना मालिकाना हक ऐसे ही तो रजिस्टर्ड करता है।

आग्रह, गुस्सा और न बोलने की धमकी देकर संजीवनी को मना लेता है। वह भी उत्तेजित होकर और अपने प्रेम पर अटूट विश्वास करके परमजीत के सामने समर्पित हो जाती है। ''ऐसे ही उस क्षण में परमजीत को लगा जैसे उसने गर्म मोम में अपने को डाल दिया है, वह उसमें फंसता गया और अगले ही क्षण ''पहला न होने की निराशा के सन्नाटे के साथ–सथ उसे अपनी जिंदगी का सारा नक्शा मुचड़ा हुआ दिखाई दे रहा था।''[9]

पहला न होने का मतलब ''संजीवनी की उससे अलग एक व्यक्तिगत दुनिया रही होगी जिसका भागीदार कोई और रहा होगा।''[10] या जिसे पहले कोई और पुरुष भोग चुका है। निस्संदेह वह एक अनछुई कुंआरी कन्या के भ्रम में यहां तक आ गया था।

परमजीत को यह जानकर बेतरह तकलीफ हुई कि वह संजीवनी की जिंदगी में पहला पुरुष नहीं है। यह बात उसे पत्थर की तरह लगी क्योंकि लड़कियों के कुंआरेपन की पहचान उसने चीख–पुकार और खून से संबद्ध की थी। उसे यह अपनी हार लगी क्योंकि वह तो संजीवनी की देह पर विजय हासिल करना चाहता था। अब 'परास्त' होकर कैसे लौटै? और कैसे ऐसी धोखेबाज लड़की की साथ शादी करके 'घर' बसाये।

'बेघर' में यौन–पवित्रता को महत्व दिया गया है आज भी हमारे समाज में कुंआरेपर को महत्व दिया जाता है। आज भी अधिकांश पुरुष कुंआरी लड़कियों से विवाह करना बेहतर मानते हैं। विवाह पूर्व देह–संबंधों के बाद अधिकांश पुरुष अक्सर एक और 'विजय' पर ही निकल जाते है। यही नहीं ज्यादातर स्त्री–पुरुष (विशेषकर स्त्रियाँ) विवाह के बाद अपने प्रेम–प्रसंगों का आपस में उल्लेख तक नहीं करती। विवाह पूर्व प्रेम संबंधों की बात स्त्रियां भले ही 'अनसुनी' कर दें, लेकिन पुरुष पत्नी की 'गलती' को आसानी से माफ नहीं कर पाता।

''पुरुष अपनी पत्नी को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति मानता है इसलिए उसे पतिव्रता होना आवश्यक है। किसी भी वस्तु पर अपना आधिपत्य जमाने का सबसे श्रेष्ठ उपाय है कि दूसरों को उसका उपयोग न करने दिया जाए। मनुष्य की तीव्र इच्छा होती है कि जो कुछ उसका अपना है, वह कभी भी किसी दूसरे का न बना हो, दूसरे के आधिपत्य में न रहा हो। ऐसी विजय को वह अद्वितीय व महत्वपूर्ण घटना मानता है। अन्वेषकों को वे प्रदेश आकर्षित करते है, जहाँ पहले कोई न गया हो।''[11]

जिस वस्तु को मनुष्य स्वयं वेध लेता है, स्वयं ही ग्रहण करता है, उसे वह स्वरचित सी प्रतीत होती है। यदि एक ही वस्तु अनेक द्वारा वांछित हो और अनेक लोग ही उसका उपयोग करते हो तो उस वस्तु का नाश हो गया।

''व्यक्तिगत सम्पत्ति के उत्तराधिकार को पुरुष सत्ता द्वारा गढ़े फायदे कानून के अनुसार बनाए बचाए रखने के लिए कौमार्य, यौन–शुचिता वगैरह को आवश्यक नैतिक मापदण्ड माना जाता रहा है। यह सिर्फ स्त्रियों के लिए ही जरूरी है– पुरुषों के लिए नहीं। जहां स्त्री इस नियम का उल्लंघन करती है वहां उसे फौरन घर से 'बेघर' कर दिया जाता है। यानि विवाह संस्था से बाहर। कुल्टा, वेश्या, कालगर्ल जैसे नाम देकर उन्हें सांझी सम्पत्ति या उपभोग की वस्तु बना दिया जाता है।''[12]

परमजीत में संजीवनी की जिंदगी में पहला न होने का दुख इतना हावी होता है कि वह संजीवनी से अपना संबंध तोड़ लेता है यह एक रूढ़िग्रस्त व्यक्ति की मानसिकता का चित्रण है। परमजीत का यह विश्वास शरीर–विज्ञान पर आधारित है। परिणामस्वरूप ''कौमार्य का मिथक'' उसे संजीवनी से 'विरक्त' बना देता है। इसके बाद ''बम्बई की सजी संभ्रांत लड़कियों को देखकर उसे दहशत होती है, जैसे कपड़ों के पार वे कोई भयंकर भेद छुपाए हैं।''[13] कुंआरेपन की बात को वह इतना बड़ा समझता है कि जहां उसने पहले सोचा था कि वह संजीवनी की आंखों में कभी आंसू भी बर्दाश्त नहीं कर पाएगा परन्तु जब यही संजीवनी उसके सामने रोती है तो ''उसने पाया वह इतना कुछ बर्दाश्त कर गया कि अब कोई और बात उसे हिला नहीं सकेगी।''[14] संजीवनी को कुछ भी कहने का मौका दिए बिना 'विरक्त' हो परमजीत अपने घर चला गया। फिर मिलने की कोई और वजह शेष नहीं बची थी। वह दिल्ली जाकर रमा नाम की लड़की से शादी करता है। सुहागरात के बाद सुबह उठकर परमजीत को बहुत अच्छा लगा था। उसकी बीवी कुंआरी थी और सीधी–सादी कुंआरी लड़कियों की तरह उसने रात काफी तकलीफ बर्दाश्त की थी।

स्त्री के कुंआरेपन को लेकर पुरुष समाज में जो रूढ़िवादी धारणाएं व्याप्त हैं वे बहुत प्राचीन हैं। रामायण एवं महाभारत तक में स्त्री की यौन–शुचिता की बात कही गई है। राम ने भी सीता की यौन–पवित्रता को महत्व दिया था।

दूसरी ओर संजीवनी खुद अपराध बोध से कभी मुक्त नहीं हो पाती। वह आधुनिक है बैंक में नौकरी करती है आर्थिक रूप से स्वतंत्र है और अपने परिवार, समाज में अपनी हैसियत रखती है परन्तु वह भी परमजीत से अपना प्रेम प्रतिदान मांगे बिना ही अलग हो जाती है क्योंकि वह भी अपने जीवन की उस घटना को नही भूल पाती जिसमें विपिन ने संजीवनी का शील भंग किया था लेकिन यदि वह सब कुछ बता भी देती तो क्या परमजीत उसकी बात पर विश्वास करता। उसके लिए तो यह पुरुष सत्ता द्वारा निर्धारित कानूनी मर्यादा

का 'उल्लंघन' है जिसे अनदेखा कर क्षमा नहीं किया जा सकता। परमजीत की नजर में संजीवनी ने ऐसी गलती की थी जिसे आसानी से माफ नहीं किया जा सकता था।

संजीवनी चुपचाप खून का घूंट पीकर रह जाती है क्योंकि महानगरों में भी उस समय कौमार्य के मिथक से औरत इतनी मुक्त नहीं थी जितनी आज दिखाई देती है। तब नैतिक मर्यादा तोड़ना और तोड़कर स्वीकार करना ही असंभव था परन्तु बाद में धीरे–धीरे विवाह के वादे पर देह–संबंध बनाती लड़कियों के पास लड़कों ने विश्वासघात किया तो वे चुप रहने की जगह उन्हें अदालत तक खींचकर ले गईं। मान–सम्मान की कीमत पर इस प्रतिरोध का भले ही कोई न्यायपूर्ण हल न मिला हो लेकिन लड़कियों ने बदनामी के भय से मुक्त होने की कोशिश तो की।

''मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में ''कौमार्य भंग'' होना (चाहे बलात्कार के कारण क्यों न हो) स्त्री के लिए उसके भविष्य में आग लगने जैसा है, हालांकि इसमें उसका कोई दोष नहीं होता है। अधिकांशतः बलात्कार के मामले इसलिए घर के आंगन में दफना दिये जाते हैं कि परिवार की प्रतिष्ठा का क्या होगा? कौन करेगा ऐसी लड़की से विवाह? सगाई टूट जाएगी या पति छोड़ देगा तो वह कहां जाएगी? पिता माँ, भाई रिश्तेदार सब लड़की को चुप रहने की सलाह देते हैं क्यों?''[15]

परमजीत संजीवनी जैसी आधुनिक लड़की से शादी करना चाहता है लेकिन जब उसे पता चलता है कि वह उसकी जिंदगी में पहला पुरुष नहीं है तो उस पर यह दुख इतना हावी होता है कि वह संजीवनी के साथ अपना प्रेम–संबंध तोड़ लेता है और वह न चाहते हुए भी मां–बाप की मर्जी से गांव की घरेलू सीधी–सादी लड़की रमा से शादी कर लेता है। पर वह रमा से शादी की पहली रात बहुत खुश होता है क्योंकि उसकी बीवी कुंआरी थी। रमा झगड़ालू, शंकालु, जिद्दी, फूहड़ आम औरतों की तरह है। वह पहला होने का सुख तो देती है पर उसका सुख–चैन छीन लेती है। परमजीत रमा से शादी करके घर बसा लेता है पर संजीवनी अकेली रहती है। ''कई वर्षों बाद जब वह परमजीत को एक ट्रेन के डिब्बे में खड़ी हुई दिखाई देती है तो परमजीत को यह सोचते हुए खुशी हुई कि संजीवनी अकेली थी।''[16]

चूंकि 'सतीत्व' शब्द सिर्फ नारी के लिए है, पुरुष के लिये नहीं। इसलिए पुरुष को अग्नि परीक्षा के झमेले में नहीं पड़ना पड़ता स्त्री को अकेले ही सती होना पड़ता है पवित्र रहना पड़ता है। इतना ही नहीं, पति के भोग के लिए खुद को उसके योग्य बनाना पड़ता है।

'बेघर' उपन्यास अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। आज यौन–शुचिता का जो मिथक टूट रहा है उसको बड़ी खूबसूरती के साथ 'बेघर' में ममता कालिया ने चित्रित किया है। उसके नारी पात्र भी शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के हैं। उपन्यास में बलात्कार और दाम्पत्य के बिखराव की समस्या को भी उठाया गया है। रूढ़िवादी व्यक्ति की प्रवृत्ति भी स्पष्ट की गई है दाम्पत्य के बिखराव की कहानी 'बेघर' कहता है। सामाजिक पारिवारिक और व्यक्तिगत समस्याओं की सफल प्रस्तुति 'बेघर' के माध्यम से की गई है। यह भी समझ में आता है कि आज भी समाज नारी की यौन–पवित्रता जैसी रूढ़िगत विचारधारा से उबरना नहीं चाहता है। परन्तु यह भी समझना जरूरी है कि स्त्री–मुक्ति के बिना समाज की मुक्ति नहीं हो सकती।

संदर्भ –

1. विजयमोहन सिंह – कथा समय, पृ.103
2. ममता कालिया – 'बेघर', (भूमिका से) पृ.8
3. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.74
4. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.47
5. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.77
6. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.83
7. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.83
8. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.91
9. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.92
10. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.10
11. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.93
12. प्रभा खेतान – स्त्री उपेक्षिता, पृ.79

13. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.11
14. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.130
15. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.94
16. ममता कालिया – 'बेघर', पृ.148